Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2018 GISRRJ | Volume 1 | Issue 1 | ISSN : 2582-0095

वर्तमान संदर्भ में सनातन धर्म की प्रासंगिकता (स्मृति–ग्रन्थों के आलोक में)

डॉ. सी.के.झा
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, एम.पी.एन. कॉलेज, मुलाना, अम्बाला (हरियाणा)

शोधसारांश– मनुष्य स्मृति–ग्रंथों में प्रतिपादित धर्म का अनुसरण करे तो निश्चय ही कुटुम्ब में सुख, वैभव तथा शान्ति का आगमन होगा और जो टूटन, बिखराव और तनाव वर्तमान समय में समाज में हर ओर व्याप्त है, वह अवश्य घटेगा तथा नैतिक मूल्यों का विघटन रूक जायेगा और एक उच्च समाज के प्रतिष्ठापन की प्रक्रिया आरम्भ होगी। मनुष्य में उच्च मनुष्यत्व को प्रकट करने का लक्ष्य इस धर्म का है। मानव–मानव के बीच प्रेम–भाव रहे, यही सच्चा धर्म है।

मुख्य शब्द– सनातन, धर्म, मनुष्य, स्मृति ग्रन्थ, कुटुम्ब, सुख, वैभव, शान्ति।

श्रुति और स्मृति हिन्दू धर्म के प्रमुख आधार ग्रन्थ हैं। इनमें श्रुति सभी धर्मों का उत्स है। **"वेदोऽखिलो धर्ममूलम्"** इस कथन के द्वारा मनु ने श्रुति को सभी धर्मों का मूल माना है। सभी स्मृतियों ने उसी से अपना नाम ग्रहण किया है। वस्तुतः सभी स्मृतियाँ वेद पर ही आधारित हैं। अपौरुषेय वेद के द्वारा प्रतिपादित होने के कारण धर्म की अपौरुषेयता अवश्य ही सिद्ध होती है। धर्म देश या काल से यथार्थतः परिच्छिन्न नहीं होता, देश और काल से यथार्थतः अपरिच्छिन्न होना ही धर्म का धर्मत्व है। वस्तुतः धर्म वह मानवीय मूल्य है जिसके धारण करने अर्थात् अपनाने से मानव पशुत्व से ऊपर उठकर वास्तव में मानवत्व का अधिकारी बनता है।

ऋग्वेद में धर्म शब्द धार्मिक विधियों अथवा धार्मिक क्रिया–संस्कारों के रूप में प्रयुक्त हुआ है।[1] ऋग्वेद के कुछ मंत्रों में धर्म शब्द का अर्थ निश्चित नियम अथवा आचरण नियम के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[2] मीमांसा दर्शन धर्म–जिज्ञासा को ही प्रमुख प्रतिपाद्य मानते हुए वेदानुमोदित प्रेरक तत्त्व को ही धर्म मानता है।[3] वैशेषिक दर्शन में जिसके द्वारा अभ्युदय अर्थात् आनन्द तथा निःश्रेयस् अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति हो उसे ही धर्म कहा है।[4] निष्कर्ष रूप में धर्म के स्वरूप पर विचार करते हुए डॉ0 चन्द्रकान्त शुक्ल ने लिखा है "भारतीय मत से हम पाते हैं कि धर्म का कोई विशेष लक्षण नहीं है, अपितु जीवन के लिए जितने भी शुभ कार्य तथा सदाचारपूर्ण कार्य हो सकते हैं, वे धर्म में समाहित हैं।[5]

महर्षि मनु ने **"धर्मो रक्षति रक्षितः"** कह कर यह बताया है कि सदा धर्म में मन लगाना चाहिए; क्योंकि धर्म की सेवा नहीं करने से अधम गति होती है।[6] यद्यपि धर्म के अन्तर्गत आने वाले विविध विषयों का विवेचन महर्षि मनु ने किया है।[7] किन्तु उनके अनुसार सत्य बोलना सनातन धर्म है, और सत्य से ही धर्म बढ़ता है।[8] उन्होंने यह बताया है कि भिन्न–भिन्न युगों के व्यक्तियों के लिए धर्म का स्वरूप भी भिन्न–भिन्न हो जाता है। सत्य युग में तप की प्रधानता होती है, त्रेता में ज्ञान, द्वापर में यज्ञ और कलियुग

Received: 01 Dec 2018 | Accepted: 20 Dec 2018 | November-December-2018 [1 (1) : 221-225]

में दान को ही प्रमुख धर्म माना गया है।[9] मनु ने विस्तार से विविध वर्णों के व्यक्तियों के लिए आपद्–धर्म का भी विवेचन किया है जिसके अनुसार विपत्ति के समय उन्हें धार्मिक कृत्यों में भी छूट मिली रहती है।[10]

याज्ञवल्क्य ने भी धर्म के विषय में विस्तार से विवेचन किया है। उन्होंने पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, ज्योतिष, व्याकरण और चारों वेदों को अर्थात् चौदह विद्याओं को धर्म का स्थान या कारण माना है।[11] मनु की तरह ही उन्होंने भी दान, यज्ञ, आचार, इन्द्रिय–निग्रह आदि को धर्म के अंतर्गत माना है।[12]

पराशर मुनि ने भी अलग–अलग युगों के लिए अलग–अलग धर्म का विवेचन किया है, जिसमें कलियुग के लिए दान की महत्ता उन्होंने भी स्वीकार की है।[13] उन्होंने यह बतलाया है कि कलियुग में अधर्म ही प्रमुख हो जाएगा और आचार–भ्रष्ट मनुष्यों से धर्म पराङ्मुख हो जाता है।[14] इस तरह मनु, याज्ञवल्क्य तथा पराशर तीनों ने ही विस्तार से धर्म–तत्त्व का प्रतिपादन किया है जो पुरुषार्थों में सर्व–प्रथम है और धर्मशास्त्रों के अनुसार सर्वप्रमुख भी है। धैर्य, सहनशीलता, मन, चित्त और अहंकार आदि अन्तः करणों का संयम, चोरी न करना, तन, मन और वचन की पवित्रता, आँख–कान एवं जिह्वा आदि इन्द्रियों का संयम, विचारशीलता, विद्या, सत्य और अक्रोध इन दश गुणों की सम्मिलित संज्ञा ही धर्म है।[15] यदि कोई धार्मिक बनना चाहे तो उसमें उपर्युक्त दश गुण अनिवार्य रूप से होने चाहिए। ये समस्त गुण ऐसे हैं जिनकी मानव को मानवता की कोटि में सम्मिलित होने हेतु भूतकाल में आवश्यकता थी, आज है और भविष्य में सदैव रहेगी। वस्तुतः मनुष्य कहलाने हेतु विश्व के समस्त धर्मावलम्बियों एवं विभिन्न देशवासियों में इन मानवीय मूल्यों की विद्यमानता अपरिहार्य है। इसलिए देश, काल एवं समय की सीमाओं से परे मानव मात्र के लिए अनिवार्य रूप से अपेक्षित इन गुणों की सामूहिक संज्ञा सनातन धर्म है। अंग्रेजी शब्द 'रिलीजन' के लिए हमने 'धर्म' को पर्याय मान कर बड़ी गलती की। दोनों में महान अन्तर है। 'रिलीजन' का यथार्थ पर्याय 'मजहब' है, न कि धर्म। किसी विशिष्ट व्यक्ति द्वारा सामयिक उपयोगिता की दृष्टि से एक–दूसरे को विशिष्ट समाज के रूप में बाँधने के लिए जो आचार प्रधान नियम बनाये जाते हैं वे ही 'रिलीजन' (बाँधना) धातु से सम्बद्ध हैं। फलतः 'रिलीजन' एक समाज में विभिन्न मानवों को बाँधने वाली अनुष्ठान विधियों का द्योतक है, जबकि धर्म उससे नितान्त भिन्न है। धृ (धारण करना) धातु से निष्पन्न 'धर्म' शब्द उन ईश्वर निर्मित सिद्धान्तों का द्योतक है जो समस्त विश्व को प्रतिष्ठा देने वाले स्थिर तथा धारण करने वाले होते हैं। 'रिलीजन' या मजहब अथवा मत (सम्प्रदाय) देश तथा काल की परिधि से सीमित होता है। उसका उदय किसी विशिष्ट देश तथा काल में, व्यक्ति विशेष के प्रयत्नों का परिणत फल होता है। उधर 'धर्म' होता है ईश्वर निर्मित, नित्य, सर्वदा स्थायी, देश काल की सीमा का अतिक्रमण करने वाला। इसलिए धर्म निरपेक्ष तत्त्व है और सम्प्रदाय सापेक्ष है। सम्प्रदाय की स्पष्ट जानकारी के लिए उससे पूर्व विशेषण लगाने की आवश्यकता होती है– इस्लाम मजहब, ईसाई मजहब, जैन मत या बौद्ध मत, परन्तु धर्म के स्वरूप ज्ञान के लिए किसी विशेषण या किसी नियामक शब्द की आवश्यकता नहीं होती। धर्म तो धर्म ही है, अखण्ड सत्तात्मक नित्य पदार्थ, उसके काल से अपरिच्छेद्य रूप को सूचित करने के लिए 'सनातन' (सर्वदा स्थायी) विशेषण कभी–कभी जोड़ा जाता है। फलतः धर्म अथवा सनातन धर्म एक ही वस्तु है। धर्म की नित्य सत्ता के रूप में अवगत होने पर यह प्रश्न ही नहीं उठता कि धर्म जीवित है क्या ? धर्म नित्य है, वह सर्वदा जीवित है; धर्म की मृत्यु ब्रह्मांड की मृत्यु है। ब्रह्मांड को अपनी धुरी पर रखने वाला तत्त्व ही तो धर्म है।[16]

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि किसी विशेष गुणगौरवशाली आचार्य द्वारा देश कालानुसार किसी देश में जो सद्–उपदेश किया जाता है, वह सम्प्रदाय है, जबकि धर्म का द्योतक तत्त्व है–सार्वभौमत्व, सर्वकालिकत्व और अद्वितीयत्व ।

आज के सन्दर्भ में धर्म की प्रासंगिकता :– आज धर्म की वास्तविक परिभाषा एवं धारणा से विमुख होकर हम धर्म को कभी जहर कहते हैं, तो कभी धर्म को राजनीति से अलग करने की बे–सिर पैर की बातें करते हैं। कल्पना कीजिए कि यदि किसी मानव या राजनीतिज्ञ में धृति, क्षमा आदि धर्म लक्षण न हों तो क्या वह मानव कहलाने का अधिकारी रह पायेगा। क्या राजनीतिज्ञों में विद्या, सत्य, अक्रोध और अस्तेय आदि गुण अपेक्षित नहीं है? यदि अपेक्षित हैं तो फिर धर्म के सम्बन्ध में पत्र–पत्रिकाओं के सम्पादक अनाप–शनाप क्यों लिखते जा रहे हैं ? राजनेता ऊलूल–जलूल विधेयक पास करने की क्यों सोच रहे हैं ? कारण स्पष्ट है कि ऐसे सभी लोग धर्म के मूल तत्त्व–निःस्वार्थ प्रेम भाव से विरहित हो गये हैं।

जब धर्म की निःस्वार्थता प्रेममय है तथा समूचा मानव समुदाय विश्व के किसी न किसी धर्म से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ा है एवं धार्मिक स्थलों अर्थात् मन्दिरों, गुरूद्वारों एवं गिरिजाघरों की नित्य मशरूम की भाँति वृद्धि हो रही है, तो भी चारों ओर छल, कपट, चोरी, डकैती, बलात्कार, कदाचार, हिंसा और वैर–विरोध की तूती क्यों बोल रही है? केवल इसलिए क्योंकि आज मानव में धर्माचरण और नैतिकता (सदाचार) की कमी आ गई है। साक्षरता के व्यापक होने पर भी, पढ़े लिखों की प्रचुरता होने पर भी स्वार्थ और हिंसा का बोलबाला क्यों है? इसलिए क्योंकि हमारी कथनी और करनी में अन्तर आ गया है। यद्यपि आज सभी पढ़े लिखे जानते हैं कि सत्य बोलना चाहिए। तैत्तिरीय उपनिषद् का **"सत्यं वद, धर्म चर"**[17] वाक्य विश्व के अधिकांश लोगों को किसी न किसी माध्यम से सुविदित है परन्तु सत्य भाषण कितने लोग अपने दैनिक व्यवहार में कर रहे हैं? कौन नहीं जानता कि क्षमा महान गुण है तथापि शिष्य अध्यापक के प्रति असहिष्णु, पुत्र पिता के प्रति तथा पत्नी पति के प्रति, चिकित्सक रोगी के प्रति एवं अमीर गरीब के प्रति सतत् असहिष्णु बना हुआ है। यद्यपि इतिहास भी इस बात का साक्षी है कि – **"यः क्रियावान् स पण्डितः"**[18] तथापि हम सब रावणत्व को प्राप्त हो गये हैं। इस प्रकार समूचा विश्व व्यर्थ में ही ज्ञान के बोझ को ढो रहा है। आज के पढ़े–लिखे इन्सान में और शब्दकोश में केवल सजीव तथा निर्जीव मात्र का भेद रह गया है। पढ़े–लिखे इन्सान आचरण के अभाव में उन निर्जीव शब्दकोशों के तुल्य हैं जो जानते तो सब कुछ हैं परन्तु कर कुछ नहीं सकते। यह स्थिति अनैतिकता अर्थात् आचारहीनता का ही परिणाम है क्योंकि समाज में रहने के लिए समुचित आचार तथा व्यवहार को ही धर्म के रूप में जाना जा सकता है।[19] इस तरह कोई भी समाज धर्म को अस्वीकार करके नहीं चल सकता और समाज का आधार लिए बिना धर्म भी नहीं हो सकता।

आज विश्व में जो कुछ भी दुराचार और कदाचार हो रहा है उसका एक मात्र कारण है– हमारी आचारहीनता। स्मृति–ग्रंथों में जिस धर्म का विवेचन हम प्राप्त करते हैं, वह वस्तुतः समाज में समुचित रीति से रहने के लिए व्यक्तियों की जीवन–प्रणाली का नाम है। **'धारणात् धर्मः'** इस अर्थ में आने वाला भारतीय, आर्य या सनातन धर्म कभी भी मानव–मानव के बीच विभेद की बात कर ही नहीं सकता। मानव की आचार–विधि अथवा जीवन पद्धति का उल्लेख करने के कारण स्मृतियों में विवेचित धर्म आज भी अपनी प्रासंगिकता बनाए हुए है। स्मृति ग्रंथों में धर्म के जो चार[20] या दस[21] लक्षण बताये गये हैं वे किसी भी काल, स्थान या व्यक्ति के लिए पूर्णतया अनुकरणीय हैं।

स्मृति ग्रंथों में धर्म के अंतर्गत कुछ ऐसे विषयों का विवेचन हुआ है जिनकी प्रासंगिकता विचारणीय हो जाती है, वे हैं यज्ञ करना, अहिंसा आदि। आज के वैज्ञानिक युग में यज्ञ करने की बातें हास्यास्पद लग सकती हैं, किन्तु यदि हम गम्भीरतापूर्ण विचार करें तो यज्ञ की भी महत्ता सिद्ध हो जाती है। यज्ञों के करने से मानव का तो चित्त शुद्ध होता ही है, साथ ही साथ समस्त प्रकृति भी शुद्ध हो उठती है। आज के वैज्ञानिक ने यह सिद्ध कर दिया है कि सबसे दुर्लभ और सबसे उपयोगी ओज़ोन वायु की उत्पत्ति में यज्ञ धूम सर्वाधिक प्रभावशाली होता है। यह देखा गया है कि जिस क्षेत्र में यज्ञ आदि अधिक होते हैं उस क्षेत्र

में वर्षा का आधिक्य रहता है और उससे वनस्पतियों की उत्पत्ति भी अधिक मात्रा में होती है। इस रूप में यज्ञ करना आज के युग में भी प्रासंगिक है।

स्मृति ग्रंथों में अहिंसा को धर्म के अंतर्गत स्थान दिया गया है। प्रश्न उठता है कि क्या जीवों की हिंसा करनी चाहिए? भारतीय अनेक ग्रंथों में **'जीवो जीवस्य जीवनम्'** कह कर पशु हिंसा की बात कही गई है। हमारे स्मृति–ग्रंथ भी इसका विरोध नहीं करते हैं, किन्तु स्मृति ग्रंथों में जिस अहिंसा का उल्लेख प्राप्त होता है, वह यह बताता है कि व्यर्थ में ही ऐसे जीवों की हिंसा नहीं करनी चाहिए जो हमारे लिए किसी न किसी रूप में लाभदायक हैं। इस तरह स्मृति ग्रंथों में आया हुआ अहिंसा शब्द भी प्रासंगिक बना हुआ है। आज जिस रूप में हम समाज में एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति का अथवा एक वर्ग को दूसरे वर्ग के खून का प्यासा देखते हैं, यदि स्मृति–ग्रंथों की अहिंसा का पाठ उन्हें पढ़ाया जाए तो निश्चित रूप से मानव मानव में भ्रातृत्व का स्वाभाविक विकास होगा, जिसकी आज नितान्त कमी है। इसी प्रकार शौच, इन्द्रिय–निग्रह, दान, दया आदि धर्म के तत्त्व तो सार्वकालिक सत्य हैं और उनकी प्रासंगिकता पर किसी प्रकार का प्रश्न नहीं उठ सकता है।

आज धर्म शब्द का जिस रूप में गलत अर्थ लगाया जा रहा है, वह निश्चित रूप से स्मृति ग्रंथों अथवा अन्य भारतीय ग्रंथों में आए हुए धर्म शब्द के अर्थ से नितान्त भिन्न है। उदाहरण के लिए हिन्दू धर्म अलग वस्तु है और हिन्दू सम्प्रदाय अलग वस्तु। जब हम हिन्दू धर्म का उल्लेख करते हैं तो उससे जिस जीवन प्रणाली का बोध होता है वह वैदिक अथवा सनातन जीवन प्रणाली को द्योतित करता है। इस तरह स्मृति–ग्रंथों में आया हुआ धर्म तत्त्व पूर्णतया प्रासंगिक है। आज की परिस्थिति में भी धर्म मानव को पूर्णता की ओर अग्रसर करता है। शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक इस त्रिविध पूर्णता के अभाव में जीव का वैयक्तिक विकास पूरा नहीं कहा जा सकता। फलतः भारतीय सनातन धर्म अकर्मण्यों का धर्म नहीं है, वह क्रियाशीलों का धर्म है।

आज जिस तरह लोग अर्थार्जन तथा कामोपभोग के लिए प्रवृत्त दिखते हैं उनको संयमित करने के लिए स्मृति–ग्रन्थों में प्रतिपादित धर्म की प्रासंगिकता निर्विवाद है। यदि मनुष्य स्मृति–ग्रंथों में प्रतिपादित धर्म का अनुसरण करे तो निश्चय ही कुटुम्ब में सुख, वैभव तथा शान्ति का आगमन होगा और जो टूटन, बिखराव और तनाव वर्तमान समय में समाज में हर ओर व्याप्त है, वह अवश्य घटेगा तथा नैतिक मूल्यों का विघटन रूक जायेगा और एक उच्च समाज के प्रतिष्ठापन की प्रक्रिया आरम्भ होगी। मनुष्य में उच्च मनुष्यत्व को प्रकट करने का लक्ष्य इस धर्म का है। मानव मानव के बीच प्रेम–भाव रहे, यही सच्चा धर्म है।

सन्दर्भ :–

1. ऋग्वेद, 1.22.18, 5.26.6, 7.43.24 तथा 9.64.1
2. वही, 4.43.3, 5. 63.7, 6.70.1 तथा 7.89.5
3. मीमांसा सूत्र 1.1.2
4. यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस् सिद्धिः स धर्मः। वैशेषिक सूत्र, 1.1.1 तथा 1.1.2
5. संस्कृत के दार्शनिक नाटकों का संविधानक तत्त्व, पृ० 29
6. मनुस्मृति, 8.15, 12.23 तथा 12.52
7. वही, 2.12, 6.92 तथा 93
8. वही, 4.138 तथा 8.83
9. वही, 1.85–86
10. वही, 10.81 से 98
11. याज्ञवल्क्यस्मृति, 1.3

12. वही, 1.6–8
13. वही, 1.22–23
14. वही, 1.30–31 तथा 37
15. धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम् ।। मनुस्मृति, 6.92
16. भारतीय धर्म और दर्शन, पृ० 13
17. तैत्तिरीय उपनिषद्, 1.11.1
18. महाभारत, वन पर्व, 313.110
19. आचारः परमो धर्मः। मनुस्मृति, 1.108
20. वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः। एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ।। मनुस्मृति, 2.12
21. धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।। वही, 6.92